ज्ञान तत्व 348

मंथन कमांक 11– सावधान! युग बदल रहा है।

भारतीय संस्कृति में चार युग माने गये है– सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। चारों युगों का चरित्र और पहचान अलग–अलग मानी जाती है। यदि आधुनिक युग से तुलना करें तब भी चार संस्कृतियॉ अस्तित्व में है–(1) विचार प्रधान (2) शक्ति प्रधान (3) अर्थ प्रधान (4) उन्मुक्त प्रधान। इन्हें ही भारत में कमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र संस्कृति माना जाता है। पहली संस्कृति हिन्दुत्व के साथ जोड़कर देखी जाती है तो दूसरी इस्लाम तीसरी इसाईयत और चौथी साम्यवाद। वर्तमान समय में हम चारों का अनुभव कर चुके हैं। यह कहना गलत है कि श्रृष्टि के प्रांरभ से लेकर अब तक संस्कृतियों का प्रभाव घटते–घटते पहली बार कलयुग के रुप में आया है। बल्कि यथार्थ यह है कि देवासुर संग्राम कई बार हुआ है और पृथ्वी पर कई बार संस्कृतियों का उतार चढ़ाव होता रहा है।

बहुत प्राचीन समय में क्या व्यवस्था थी यह ठीक–ठीक नहीं बताया जा सकता क्योंकि किंवदंती के अनुसार ही हम रामकृष्ण, रावण, कंस, का अस्तित्व स्वीकार करके अपनी धारणा को पुष्ट करते है किन्तु बुद्ध महावीर के काल से लेकर स्वतंत्रता तक का इतिहास उपलब्ध है जिस आधार पर कुछ पुष्ट धारणा बनाई जा सकती है। यद्यपि इस इतिहास में भी कितनी मिलावट है कितना यथार्थ यह नहीं कहा जा सकता किन्तु कुछ बाते यथार्थ के रुप में कहीं जा सकती है क्योंकि उनका प्रभाव आज तक दिखाई दे रहा है। स्वतंत्रता के बाद का सारा घटनाकम प्रत्यक्ष दिख रहा है और उसकी वास्तविक समीक्षा विश्वासपूर्वक की जा सकती है।

यदि हम स्वतंत्रता के बाद का इतिहास और वर्तमान स्थिति की तुलना करें तो कुछ बाते विश्व से लेकर भारत तक में साफ देखी जा सकती हैं। भारत ने राजतंत्र, इस्लाम, अंग्रेज तथा साम्यवाद का पर्याप्त अनुभव किया है। स्वतंत्रता के बाद यद्यपि भारत में लोकतंत्र था किन्तु वह लोकतंत्र पूरी तरह वामपंथ के प्रभाव में था जो 91 के बाद बदलना शुरु हुआ। वर्तमान समय में साम्यवाद वामपंथ अथवा समाजवाद इतिहास की वस्तु बन चुके हैं। अब यह विचारधारा लगभग समापन की ओर है। स्वतंत्रता के बाद भारत में इस्लाम भी लगातार विस्तार पाता रहा। यहॉ तक कि भारत में हिन्दुओं का तीन चौथाई बहुमत होते हुये भी हिन्दू मुसलमानों की तुलना में दूसरे दर्जे के नागरिक बनकर रहे। जनसंख्या और मनोबल के आधार पर भारत में मुसलमान सर्वाधिक शक्तिशाली रहे। भारत में अव्यवस्था भी चरम तक बढ़ी और भ्रष्टाचार भी। नक्सलवाद और आतंकवाद भी लगातार बढता गया। ऐसा लगा कि वास्तव में कलयुग अपने चरम पर है। हिन्दुत्व और इस्लाम की मान्यताओं में एक विशेष अंतर यह होता है कि इस्लाम धर्म को ही मानवता मानकर चलता है जबकि हिन्दुत्व मानवता को ही धर्म मानता है। इस्लाम धर्म नहीं होता बल्कि सिर्फ संगठन मात्र होता है जबकि हिन्दुत्व संगठन बिल्कुल नहीं होता सिर्फ धर्म होता है। इस्लाम में अंतिम सत्य खोजने पर पूरी तरह प्रतिबंध होता है जबकि हिन्दुत्व अंतिम सत्य खोजने की पूरी स्वतंत्रता देता है। इस्लाम संगठन शक्ति को सहजीवन से अधिक महत्व देता है। इस्लाम न्याय की तुलना में अपनत्व को अधिक महत्वपूर्ण मानता है। जबकि हिन्दुत्व संगठन की तुलना में संस्था को अधिक महत्व देता है तथा अपनत्व की जगह भी न्याय महत्वपूर्ण मानता है। आज दुनिया इतनी आगे चली गई है फिर भी यदि संगठित इस्लाम धार्मिक इस्लाम में आज तक नहीं बदला जा सका तो यह कलियुग का प्रभाव ही माना जा सकता है।

पिछले कुछ वर्षो से ऐसा लग रहा है कि युग बदलने लगा है। चार लक्षण बिल्कुल स्पष्ट दिख रहे हैं–

1. साम्यवादी विचारधारा लगभग समाप्त हो गई है इसलिए उस पर किसी प्रकार की चर्चा उचित नहीं।
2. संघे शक्ति कलौयुगे अर्थात संगठन में ही शक्ति है की विचार धारा राडार पर है। सबसे पहले बुद्ध ने इस विचारधारा का प्रतिपादन किया था किन्तु संगठन में ही शक्ति है, इस विचारधारा का सबसे अधिक लाभ इस्लाम ने उठाया। 1400 वर्षो तक इस्लाम इस विचारधारा को माध्यम बनाकर सारी दुनियां में छा गया। यहॉ तक कि स्वतंत्रता के पूर्व संघ परिवार ने भी हार थक कर इस्लाम की नकल की और संगठन बनाकर भारत में बड़ी सफलता प्राप्त की। किन्तु पिछले कुछ वर्षो से यह विचार धारा संकट में आ गई है। सारी दुनियां में इस्लाम अविश्वसनीय हो गया है। भारत में नरेन्द्र मोदी और अमेरिका में ट्रम्प की विजय में इस नफरत का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इस्लाम सारी दुनियां को दारुल इस्लाम में बदलने के लिए प्रयत्नशील रहा है। किन्तु अब तो ऐसा दिखने लगा है कि या तो उसे दारुल अमन की ओर लौटना होगा अन्यथा वह चौदहवी सदी की कहावत के अनुसार समापन की ओर चला जायेगा। इजराइल या वर्मा हो अथवा कश्मीर ही क्यों न हो कहीं भी इस्लामिक कट्टरवाद को अब समर्थन नहीं मिल रहा है। यहॉ तक कि अनेक मुस्लिम देश भी अब ऐसे आतंकवाद का विरोध करने लगे हैं। पाकिस्तान अलग–थलग पड़ता

जा रहा है। कश्मीर की स्थिति यह है कि कहीं लेने के देने न पड़ जाये। दुनियां के मुसलमानों को सहजीवन अपनाना ही होगा। यदि थोड़े दिनों के लिए भी संघ परिवार चुप हो जाये तो इस्लाम की अकल ठीकाने आने में देर नहीं लगेगी और मोदी के आने के बाद यह संभव भी दिखता है। आज कल सुब्रमन्यम स्वामी योगी आदित्यनाथ आदि भी कम बोलने लगे है। यह शुभ लक्षण है।

3. भारत में राजनीति का स्तर ठीक होने लगा है। सत्ता पक्ष में नरेन्द्र मोदी एक ध्रुव के रुप में स्थापित हो रहे हैं, तो विपक्ष में भी नीतिश कुमार और अखिलेश यादव लगातार लोकप्रियता की ओर बढ़ रहे हैं। अरविन्द केजरीवाल भी नीचे जा रहे है और भविष्य में ममता बनर्जी की भी यही संभावना दिखती है। इससे स्पष्ट है कि अब राजनीति में नैतिकता का ग्राफ उपर होगा। वर्तमान नोटबंदी कार्यकम ने भ्रष्टाचार पर भी अंकुश लगाने की शुरुवात कर दी है। मैं स्पष्ट हूॅ कि भारत की राजनीति ठीक दिशा में जा रही है।
4. दुनियां में फेसबुक, व्हाट्सअप आदि का प्रचलन बहुत तेजी से बढ़ रहा है। यह प्रचलन विचार मंथन में सहायक हो रहा है। अब विचार प्रचार की संभावनाऍ घटनी शुरु हो गई है। यहॉ तक कि मीडिया का भी महत्व घट रहा है और फेसबुक आदि के माध्यम से प्रत्यक्ष विचार मंथन हो रहा है। यह भी एक शुभ लक्षण है।

युग परिवर्तन अपने आप नहीं होता है बल्कि उसमें परिस्थिति अनुसार स्वयं को भी सकिय होना पड़ता है। साम्यवाद की चर्चा बंद कर देनी चाहिए। इस्लाम पर विचार करते समय ध्यान रखना होगा कि दस प्रतिशत कट्टरवादी मुल्लामौलवी 80 प्रतिशत सामान्य मुसलमानों को अपने साथ जोड़े रखते है। जो दस प्रतिशत आधुनिक सोच के मुसलमान है उन्हें ये 90 प्रतिशत एक जुट होकर अलग–थलग कर देते है। इन बीच वाले 80 प्रतिशत मुसलमानों के विचार परिवर्तन की जरुरत है जिससे वे कट्टरपंथी मुल्लामौलवीयों के नियंत्रण से बाहर आ सकें। यह कार्य संबंधो के आधार पर भी हो सकता है और विचारों के आधार पर भी। सभी मुसलमानों को गाली देने की प्रवृत्ति बहुत घातक है। जहॉ तक भारतीय राजनीति का संबंध है तो नरेन्द्र मोदी, नीतिश कुमार, अखिलेश यादव की राजनीति बीच का पड़ाव मात्र है। आदर्श स्थिति नहीं नहीं। आदर्श स्थिति के लिए एक निष्पक्ष दल विहीन तीसरे पक्ष को सामने आना चाहिए जो दलगत राजनीति से दूर रहकर जनमत पर मजबूत प्रभाव बना सके। सौभाग्य से व्यवस्थापक इस दिशा में निरंतर सफलतापूर्वक बढ़ रहा है। व्हाट्सअप फेसबुक बेबसाइट आदि को माध्यम बनाकर स्वस्थ विचार मंथन को भी प्रोत्साहित करना चाहिए। इस दिशा में भी निरंतर प्रयास जारी है। मैं पूरी तरह आश्वस्त हूॅ कि अब कलयुग का अंतिम चरण समाप्त होने तथा युग परिवर्तन के लक्षण सारी दुनियां में दिखने शुरु हो गये है। आवश्यकता यह है कि हम इस यज्ञ में अपनी आहुति कितनी और किस प्रकार दे सकते हैं, इसकी तैयारी करें।

सारी दुनियां में इस्लाम को उसके वास्तविक स्वरुप में पहचानने की शुरुवात हो गई है। अमेरिका में राष्ट्रपति ट्रम्प का अप्रत्याशित जीतना अथवा भारत में नरेन्द्र मोदी की अप्रत्याशित बढ़ती लोकप्रियता में इस्लाम के प्रति बढ़ते संदेह का बहुत बड़ा योगदान है। जिस तरह पाकिस्तान अलग–थलग होता जा रहा है। जिस तरह वर्मा में रोहिंग्या मुसलमान अकेले दिखने लगे हैं तथा उन्हें मानवता के नाम पर भी शरण नहीं मिल पा रही, जिस तरह सारी दुनियां में मानवता के नाम पर होने वाला मुसलमानों के साथ अच्छे व्यवहार का दृष्टिकोण बदलता जा रहा है वह वास्तव में युग परिवर्तन का संकेत है। चौदह वर्षो तक इस्लाम अपनी संगठन शक्ति के बल पर ही अपना विस्तार करता रहा। अब ऐसे लक्षण दिखने लगे हैं कि इस्लाम को या तो अपनी संगठनात्मक विचारधारा छोड़नी होगी अथवा अपने समापन की प्रतिक्षा करनी होगी। जिस तरह इस्लाम बढ़ता रहा उस तरह अब दुनियां स्वीकार करने को तैयार नहीं दिखती। ये लक्षण सारी दुनियां में भी दिख रहे है और भारत में भी। भारत में भी कश्मीरी आतंकवाद आज कल कुछ शराफत की भाषा बोलना शुरु कर दिया है।

यदि भारत की समीक्षा करें तो सिर्फ इस्लाम ही नहीं बल्कि अन्य मामलों में भी युग परिवर्तन के संकेत दिखने लगे है। राजनीति में तीन अलग–अलग समूह स्पष्ट हैं। सत्ता पक्ष के रुप में नरेन्द्र मोदी का एक छत्र प्रभाव बढ़ रहा है दूसरी ओर विपक्ष में भी अब नीतिश कुमार और अखिलेश यादव ही स्पष्ट आगे बढ़ रहे है तथा अन्य अनेक विपक्षी कहे जाने वाले नेताओं का प्रभाव घट रहा है। अरविंद केजरीवाल भी लगातार नीचे जा रहे है। ममता बनर्जी को भी दो चार वर्षो में चुनौती मिलेगी ही। इस तरह राजनीति में साफ सुथरी नीयत और नीति वालो का बढ़ता प्रभाव साफ दिख रहा है। व्यवस्था परिवर्तन अभियान के नाम से पक्ष विपक्ष के बीच एक निष्पक्ष प्रयत्न का निरंतर मजबूत होना भी युग परिवर्तन का संकेत दे रहा है।

आर्थिक नीतियॉ भी सारी दुनियां में बदल रही हैं। भारत में तो नोटबंदी प्रकरण ने आर्थिक नीतियों में सकारात्मक बदलाव की गति बहुत तेज कर दी है। समाज व्यवस्था भी ठीक दिशा में जाती दिख रही है। वर्ग संघर्ष घटकर आंशिक रुप से वर्ग समन्वय की तरफ बढ़ने के संकेत दिखने लगे है।

फिर भी अभी कुछ कार्य भारत में युग परिवर्तन में बाधक है। भारत की न्यायपालिका अभी भी अपनी सर्वोच्चता सिद्ध करने पर अड़ी हुई है। अभी न्यायपालिका में जे.एन.यू. संस्कृति का प्रभाव खत्म नहीं हुआ है। इसी तरह इस्लाम के संदेह के घेरे में आने से तथा नरेन्द्र मोदी के बढ़ते प्रभाव से साम्प्रदायिक हिन्दुत्व तथा संगठनवादी विचारधारा का मनोबल बढ़ने लगा है। युग परिवर्तन में इनका बढ़ता प्रभाव भी बाधक होगा क्योंकि संगठन शक्ति हमेशा सहजीवन में असंतुलन पैदा करती है। जिस तरह साम्यवाद अपने आप गया इस्लाम अपने आप कट्टरवाद को छोडेगा, उसी तरह भारत की न्यायपालिका तथा संगठन प्रिय हिन्दुत्व को भी बदलना ही होगा।

मेरी अपने मित्रों को सलाह है कि वे किसी पक्ष विपक्ष में झुकने की अपेक्षा निष्पक्ष रहने दिखने की आदत डाले। वे यदि सक्रिय होना चाहते है तो व्यवस्था परिवर्तन के प्रयत्नों से भी सम्पर्क करें। वे क्रिया के पूर्व विचार मंथन को अधिक महत्व दें। साथ ही उन्हें यह भी ध्यान देना है कि वे मुसलमानों से किसी प्रकार की घृणा या भेदभाव न करें। क्योंकि मुसलमानों में भी दस प्रतिशत ही कट्टरवादी है और इन कट्टरवादियों के प्रभाव में शामिल 80 प्रतिशत मुसलमान समझाये जा सकते है। हमारा कर्तव्य है कि हम इन 80 प्रतिशत को 10 प्रतिशत उग्रवादियों से अलग–थलग करने का प्रयास करें। दोष इस्लाम में नहीं बल्कि दोष उसके संगठन वादी चरित्र में है। युग परिवर्तन के लिए उस संगठनवादी चरित्र में बदलाव करना होगा।

अंत में मैं पूरी तरह आश्वस्त हूॅ कि अब विश्व कलियुग से धीरे–धीरे सतयुग की ओर जाने की शुरुवात कर रहा है और हमारा कर्तव्य है कि हम इन प्रयत्नों में सहयोग और समर्थन करें।

भारतीय संविधान की एक समीक्षा मंथन क्रमांक–12

पुरी दुनियां में छोटी–छोटी इकाइयों से लेकर राष्ट्रीय सरकारों तक के अपने–अपने संविधान होते हैं और उक्त संविधान के अनुसार ही तंत्र नीतियां भी बनाता है और कार्य भी करता है किन्तु हम वर्तमान लेख में भारतीय संविधान तक समीक्षा करने तक सीमित है।

तानाशाही और लोकतंत्र बिल्कुल विपरीत प्रणालियां हैं। तानाशाही में शासन का संविधान होता है और लोकतंत्र मे संविधान का शासन। भारत एक लोकतांत्रिक देश है और इसलिये हम कह सकते है कि यहां संविधान का शासन है भी और होना भी चाहिये। दुनियां के अधिकांश लोकतांत्रिक देशों में संविधान का शासन माना जाता है। स्वाभाविक है कि लम्बे समय के बाद संविधान मे कुछ बदलाव की आवश्यकता होती है। यदि हम पूरी दुनियां का ऑकलन करें तो अन्य लोकतांत्रिक देशों में भी वर्तमान संविधान अपेक्षित परिणाम नहीं दे पा रहे किन्तु यदि हम भारत का ऑकलन करे तो भारतीय संविधान सत्तर वर्षो में ही विपरीत परिणाम देता रहा है और यह गति आज तक बढ़ रही है। दुनियां के संविधान बनाने वालों की यदि समीक्षा करें तो हो सकता है कि उनसे कुछ भूलें ही हुई हो अथवा लम्बा समय बीतने के बाद कुछ परिस्थितियां बदली हों। किन्तु भारतीय संविधान बनाने वालो से अनेक भूले तो हुई ही किन्तु उनकी नीयत पर भी संदेह होता है।

यदि हम लोकतंत्र को ठीक–ठीक परिभाषित करें तो लोकतंत्र का अर्थ होना चाहिये लोक नियंत्रित तंत्र। भारतीय संविधान निर्माताओ ने इसे बदल कर लोक नियुक्त तंत्र तक सीमित कर दिया। वैसे तो पूरी दुनियां में कही भी लोकतंत्र की आदर्श परिभाषा स्पष्ट नहीं है किन्तु भारत में तो दुनियां से अलग लोकतंत्र की अपनी अलग परिभाषा बना ली। ऐसा लगता है कि हमारे संविधान निर्माताओ में सत्ता प्राप्त करने की बहुत ज्यादा जल्दी थी। आदर्श स्थिति में तंत्र प्रबंधक होता है और लोक मालिक किन्तु भारतीय संविधान निर्माताओं ने तंत्र को प्रबंधक की जगह शासक कहना शुरू कर दिया, जिसका अर्थ हुआ कि लोक मालिक नहीं बल्कि शासित है। तंत्र के अधिकार लोक की अमानत होते है किन्तु हमारे तंत्र से जुड़े लोगो ने उन्हें अमानत न समझ कर अपना अधिकार मान लिया।

पुरी दुनियां में न तो संविधान की कोई स्पष्ट परिभाषा बनी न ही मूल अधिकार की। यहां तक कि अपराध, गैर कानुनी, अनैतिक की भी अलग–अलग व्याख्या दुनियां में नहीं हो पाई। राज्य का दायित्व क्या हो और स्वैच्छिक कर्तव्य क्या हो, यह भी नहीं हो पाया। दुर्भाग्य से हमारे संविधान निर्माताओ ने जल्दबाजी में या ना समझी में इस प्रकार की परिभाषाओं पर चिंतन मंथन करने की अपेक्षा विदेशी संविधानों की नकल करना उचित समझा। परिणाम आपके सामने है कि आज तक ऐसे गहन मौलिक विषयों को कभी परिभाषित नहीं किया गया। न ही भारत में और न ही दुनियां में। संविधान की परिभाषा यह होती है कि तंत्र के अधिकतम और लोक के न्युनतम अधिकारो की सीमाए निश्चित करने वाले दस्तावेज को संविधान कहते है और व्यक्ति के अधिकतम तथा तंत्र के न्यूनतम अधिकारो की सीमाएं निश्चित करने का कार्य कानून कहा जाता है। कानून तो तंत्र के द्वारा बनना स्वाभाविक है किन्तु संविधान या तो लोक के द्वारा बनाया जायेगा अथवा लोक और तंत्र की समान भुमिका होगी। किन्तु हमारे संविधान निर्माताओ ने तंत्र को ही संविधान संशोधन के असीम अधिकार दे दिये जिसका अप्रत्यक्ष अर्थ हुआ कि भारत मे संविधान तंत्र नियंत्रित हो गया अर्थात तंत्र की तानाशाही हो गई। संविधान के मौलिक सूत्रों का

निर्माण समाज शास्त्र का विषय है और व्यावहारिक स्वरूप या भाषा राजनीति शास्त्र का। भारत का संविधान बनाने में मौलिक सोच भी राजनेताओं की रही और भाषा देने में भी लगभग अधिवक्ताओं का ही अधिक योगदान रहा। परिणाम हुआ कि भारत की संवैधानिक संरचना वकीलों के लिये स्वर्ग के समान बन गई।

भारतीय संविधान में कुछ कमियां प्रारंभ से ही दिखती हैं। (1) संविधान को हमेशा स्पष्ट अर्थ प्रदाता होना चाहिये, द्विअर्थी नहीं। आज स्थिति यह है कि न्यायालय तक संविधान की विपरीत व्याख्या करते देखे जाते है। ऐसा महसूस हो रहा है कि सुप्रीम कोर्ट की फुल बेंच के उपर भी कोई और बेंच होती तो फुल बेंच के अनेक निष्कर्ष बदल सकते थे।

(2) परन्तु के बाद मूल अर्थ न बदलकर अपवाद ही आना चाहिये किन्तु भारत के संविधान में परन्तु के बाद उसके मूल स्वरूप को ही बदल दिया जाता है। भारत मे धर्म, जाति, लिंग, का भेद नहीं होगा। सबको समान अधिकार होगे। किन्तु महिलाओ, अल्पसंख्यको, आदिवासियों, पिछड़ों के लिये विशेष कानून बनाये जा सकते है। स्पष्ट है कि भारत की 90 प्रतिशत आबादी समानता के अधिकारो से वंचित हो जाती है।

(3) धर्म, जाति, भाषा, लिंग आदि के भेद समाज के आंतरिक मामले है जबकि परिवार, गांव, जिले व्यवस्था की ईकाइया है। भारतीय संविधान ने परिवार, गांव, जिले को तो संविधान से बाहर कर दिया और धर्म, जाति, भाषा, लिंग भेद को संविधान में घुसा दिया। परिणाम हुआ कि वर्ग समन्वय टूटा और वर्ग विद्वेष वर्ग संघर्ष बढ़ गया।

(4) संविधान बनाने वालो ने तंत्र के दायित्व और स्वैच्छिक कर्तव्य का अंतर नहीं समझा। तंत्र का दायित्व होता है सुरक्षा और न्याय और स्वैच्छिक कर्तव्य होता है अन्य जन कल्याणकारी कार्यो में सहायता। संविधान निर्माताओ ने सुरक्षा और न्याय की तुलना में जन कल्याण को अधिक महत्व दिया। यहां तक कि संविधान में व्यावहारिकता का भी पूर्णतः अभाव रहा। ऐसी–ऐसी आदर्शवादी घोषणाएं कर दी गई जो संभव नहीं थी। उसका परिणाम हुआ अव्यवस्था ।

(5) संविधान निर्माताओ ने उद्देश्यिका में नासमझी में समानता शब्द शामिल कर दिया जबकि समानता की जगह स्वतंत्रता शब्द होना चाहिये था। उन्होंने समानता का अर्थ भी ठीक–ठीक नहीं समझा। आर्थिक असमानता की तुलना में राजनैतिक असमानता अधिक घातक होती है। हमारा संविधान आर्थिक सामाजिक असमानता को अधिक महत्व देता है और उसके कारण राजनैतिक असमानता बढ़ती चली जाती है।

(6) सिद्धान्त रूप से कमजोरो की सहायता मजबूतों का कर्तव्य होता है, कमजोरो का अधिकार नहीं। हमारे संविधान निर्माताओ ने इस सहायता को कमजोरो का अधिकार बना दिया। इसके कारण अक्षम और सक्षम के बीच वर्ग विद्वेष वर्ग संघर्ष बढ़ा। मजबूतो को कमजोरो ने सहायक न मानकर शोषक मान लिया।

किसी संविधान में यदि एक मौलिक कमी हो तो वह अकेली कमजोरी भी दूरगामी प्रभाव डालती है। किन्तु भारतीय संविधान में तो सारी कमियां ही विद्यमान हैं और हर साख पर उल्लू बैठा है के अन्जाम के आधार पर परिणाम स्पष्ट दिख रहा है। आज यदि भारत की जनता बढ़ती हुई अव्यवस्था के समाधान के लिये किसी तानाशाह का भी सम्मान करने को तैयार है तो यह दोष जनता का न होकर हमारे संविधान निर्माताओ का ही माना जाना चाहिये। इसलिये मैं समझता हूँ कि कही न कही संविधान निर्माताओ की नीयत में भी खराबी थी तभी उन्होंने संविधान संशोधन तक के अधिकार लोक से छीनकर तंत्र को दे दिये तथा लोकतंत्र की परिभाषा पूरी तरह बदल कर लोक नियुक्त तंत्र तक सीमित कर दी।

हम भारतीय संविधान के कुछ परिणामों की व्याख्या करें। 1. भारतीय संविधान का पहला परिणाम यह दिख रहा है कि तंत्र शरीफों, गरीबों, ग्रामीणों, श्रमजीवियों के विरूद्ध धूर्तो, अमीरों, शहरीयों, बुद्धिजीवियों का मिला जुला षणयंत्र दिखने लगा है। 2. स्पष्ट दिख रहा है कि संसद एक जेल खाना है जिसमे हमारा भगवान रूपी संविधान कैद है। संविधान एक ओर तो संसद की ढाल बन जाता है तो दूसरी ओर संविधान संसद की मुठ्ठी में कैद भी है। 3. न्यायपालिका और विधायिका के बीच ऐसी अधिकारो की छीना झपटी दिख रही है जैसे लूट के माल के बटवारे में दिखती है। 4. लोक और तंत्र के बीच दूरी लगातार बढ़ती जा रही है। लोक हर क्षेत्र में तंत्र का मुखापेक्षी हो गया है । यहॉ तक कि तंत्र और लोक के बीच शासक और शासित भावना तक घर कर गई है। 5. समाज के हर क्षेत्र मे वर्ग समन्वय के स्थान पर वर्ग विद्वेष बढ़ रहा है। 6. तंत्र का प्रत्येक अंग हर कार्य में समाज को दोष देने का अभ्यस्त हो गया है। तंत्र का काम सुरक्षा और न्याय है। किन्तु तंत्र इसके लिये भी लोक को ही दोषी कहता है। यहॉ तक कि कुछ वर्ष पूर्व भारत के प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति और विपक्ष के नेता तक ने कहा कि संविधान दोषी नहीं है बल्कि उसका ठीक–ठीक पालन नहीं होता। पालन न करने वाले दोषी है। दोषी संविधान है, व्यवस्था है, तंत्र है, और समाज में हम सुधरेगें जग सुधरेगा जैसा गलत विचार प्रसारित किया जा रहा है। 7. भारत मे लगातार अव्यवस्था बढ़ती जा रही है। भौतिक विकास तेज गति से हो रहा है और उससे भी अधिक तेज गति से नैतिक पतन हो रहा है।

समस्याओं पर हमने विचार किया किन्तु समाधान भी सोचना होगा। समस्या विश्वव्यापी है किन्तु समाधान की शुरूआत भारत कर सकता है और भारत की शुरूआत हम आप कर सकते है। 1. परिवार और गांव को तत्काल संवैधानिक अधिकार दिये जाने चाहिये। इससे तंत्र का बोझ घटेगा और तंत्र सुरक्षा और न्याय की ओर अधिक सकिय हो सकेगा। 2. संविधान को संसद के जेलखाने से मुक्त कराने की पहल होनी चाहिये। संविधान संशोधन के अंतिम अधिकार तंत्रमुक्त किसी इकाई को दिये जाने चाहियें। 3. लोक तंत्र,

मूल अधिकार, अपराध, समानता आदि की वर्तमान भ्रम पूर्ण मान्यताओ को चुनौती देकर वास्तविक अर्थ स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये। 4. संविधान कानून आदि शब्दो की भी स्पष्ट परिभाषा बननी चाहिये। भले ही अब तक दुनियां मे न बनी हो। संसदीय लोकतंत्र को बदल कर सहभागी लोकतंत्र की दिशा में बढ़ना चाहिये। 5. सांसद को दल प्रतिनिधि की जगह जन प्रतिनिधि होना चाहिये। संसदीय लोकतंत्र को बदलकर निर्दलीय व्यवस्था की ओर जाना चाहिये। जिस तरह आज संसद असंसदीय दृष्य प्रस्तुत करती है वह हमारे लिये शर्म और चिन्ता का विषय है। भारतीय संविधान में कुछ मौलिक सुधार की आवश्यकता है। ऐसे सुधार भी होने चाहिये।

मुझे विश्वास है कि भारतीय संविधान की कमजोरियां को दूर करने की हमारी कोशिश विश्वव्यापी परिवर्तन की दिशा में ले जा सकती है हमें इस दिशा में विचार मंथन करना चाहिये।

मंथन क्रमांक–13 विषय–लोक संसद

लोकतंत्र का अर्थ लोक नियंत्रित तंत्र होता है। तंत्र लोक का प्रबंधक होता हैं प्रतिनिधि नहीं। लोक और तंत्र के बीच एक संविधान होता है जो लोक का प्रतिनिधित्व करता है तथा लोक की ओर से तंत्र की सीमाएं निर्धारित करता है। लोकतंत्र में संविधान का शासन होता है और संसद सहित तीनों अंग संविधान के नियत्रण में कार्य करते हैं। संविधान के नीचे संसद, संसद के नीचे कानून, कानून के अंतर्गत नागरिक होता है। कोई भी नागरिक, चाहे कितने भी बड़े पद पर हो, किन्तु कानून से उपर नहीं हो सकता। तंत्र ही कानून बनाता है और उसका पालन भी कराता है। किन्तु यदि कानून बनाने वाला और पालन कराने वाला तंत्र ही संविधान भी संशोधित परिवर्तित करने लगे तो कानून और संविधान की अलग–अलग स्थिति ढोंग बन जाती है, जैसा भारत में हो रहा है। तंत्र के पास जो शक्ति अर्थात ताकत होती है वह लोक की अमानत होती है, तंत्र का अधिकार नहीं। दुर्भाग्य से भारत में तंत्र से जुड़ी तीनों इकाईयां संविधान से प्राप्त इस शक्ति को लोक की अमानत न समझकर अपना अधिकार समझने लगती है।

मैंने कई जगह देखा है कि कुछ लोग अपने व्यावसायिक या अन्य कुत्सित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये धर्म का सहारा लेते हैं। ये एक मंदिर बनाते हैं, उस मंदिर में किसी भगवान या साई बाबा की मूर्ति स्थापित करते हैं, और स्वयं उसके पुजारी बन जाते है। यह मंदिर और भगवान उस पुजारी के सारे गलत कार्यो मे अप्रत्यक्ष सहायक होता है। मेरा एक मित्र साधु बनकर, मंदिर बनाकर, भगवान को स्थापित करके राजनेताओं को महिलाएं सप्लाई करने का धंधा करता था। मैंने उससे किनारा किया। यह कोई एक घटना नहीं हो सकती। ठीक इसी तरह राजनीति भी अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये मंदिर और भगवान बनाकर स्वयं पुजारी के रूप में उसकी संचालन बन जाती है। आप विचार करिये कि भारत में राजनीति के नाम पर ऐसा कौन सा अपराध बचा है जो नहीं किया जा रहा। यहां तक कि नरेन्द्र मोदी जी भी संसद में जाने के पहले उसकी सीढ़ियों को प्रणाम करने का नाटक कर के लोक के समक्ष यह प्रमाणित करते है कि संसद एक मंदिर है और संविधान भगवान। वहां जाने वाला हर नेता संविधान की सपथ लेता है और जब मर्जी उस संविधान में फेर बदल भी कर देता है। मैं नहीं समझता कि इतना ढोंग करने का उद्देश्य क्या है।

कुछ बाते स्वयं सिद्ध दिख रही है। 1. किसी भी संविधान का मुख्य उद्देश्य स्वतः कानून का पालन कर रहे नागरिकों को भयमुक्त तथा कानून का उल्लंघन करने वालो को पालन करने के लिये मजबूर करना होता है। भारत में संविधान के सक्रिय हुए लगभग सत्तर वर्ष हो गये और इतनी अवधि में कानून का पालन करने वाले कानून से भयभीत हैं और उल्लंघन करने वाले लगभग भयमुक्त।

2. संविधान का कार्य तंत्र से जुड़े तीनो अंगो के बीच समन्वय स्थापित करना होता है। भारत में तंत्र से जुड़े दो अंग न्यायपालिका और विधायिका आपस में इतना नीचे उतर कर अधिकारों की छीना झपटी में लगे हैं, जैसे दो लुटेरे लूट का माल बंटवारा करने में झगड़ा करते हैं। स्पष्ट है कि लोक अर्थात समाज को वोट देने के अतिरिक्त सभी मामलों में अधिकार विहीन करने का यह परिणाम है। आज हर प्रकार के अपराधियों का राजनीति की तरफ अधिक से अधिक बढ़ता आकर्षण इस बात का स्पष्ट संकेत है कि कही न कही लोक और तंत्र के बीच मालिक और गुलाम की स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई है। लोकतंत्र लोक नियंत्रित तंत्र की जगह तंत्र नियंत्रित लोक के समान बन गया है। स्थिति यहां तक खराब हो गई है कि अब तो जनहित की परिभाषा भी तंत्र ही करने लगा है। हमारे क्या अधिकार हों, यह तंत्र ही तय करेगा और तंत्र के क्या अधिकार हों वह स्वयं तय कर लेगा। हमारा वेतन कितना हो इसका अंतिम निर्णय तंत्र करेगा और तंत्र से जुडे लोगो का वेतन तंत्र स्वयं तय कर लेगा। उसमे कोई लोक से पूछने की आवश्यकता नहीं । हरियाणा में जनहित में

शराब बंद हुई और कुछ वर्ष बाद जनहित में ही शराब चालू हो गई। क्योंकि जनहित की परिभाषा करने का अंतिम अधिकार शराब बंद और चालू करने वाले के पास ही था। उसने जब चाहा तब जनहित की मनमानी परिभाषा बना दी और यदि कही संविधान उसमे बाधक बना तो जनहित में संविधान की ही व्याख्या बदल दी। इस प्रकार भारत का संविधान संसद का गुलाम है । गुलाम संविधान को माध्यम बनाकर भारत का तंत्र सत्तर वर्षो से समाज को गुलाम बनाकर रखे हुए है।

समस्या क्या है, यह बताने वाले तो आपको गली गली मिल जायेगे, किन्तु हमारा उद्देश्य सिर्फ समस्याओं पर रोना नहीं है, बल्कि समाधान की चर्चा करना हैं। अनेक गुलाम यह कहते हुए भी दिख जाते है कि यदि हम सुधर जायेगे तो सब कुछ सुधर जायेगा। मै ऐसी गुलाम मानसिकता वालों मे शामिल नहीं हूँ । मैं तो समस्या के समाधान और उस समाधान मे अपनी प्रत्यक्ष भूमिका की चर्चा करना चाहता हूँ।

संविधान में व्यापक संशोधन की आवश्यकता है, यह मैं भी समझता हूँ। किन्तु यदि हमने अपनी सुरक्षा के लिये किसी पहरेदार को बंदूक देकर सुरक्षा कर्मी नियुक्त किया और वह पहरेदार ही उस बंदूक से मुझे समाप्त करके सब कुछ ले लेने की नीयत कर ले तो यह तय करना बहुत कठिन है कि प्रारंभ कहां से किया जाये और उसका तरीका क्या हो? स्पष्ट है कि वह बंदूक उसके हाथ से लेना सबसे पहली प्राथमिकता है। आज हमारा संविधान ससंद के कब्जे में है और उस संविधान को संसद से मुक्त कराने के बाद ही हम कुछ अन्य व्यापक संशोधनो की बात सोच सकते हैं। इसलिये हमारी सबसे पहली प्राथमिकता यह है कि संविधान संशोधन के संसद के असीम अधिकारो की स्थिति मे कुछ फेर बदल हो। इस संबंध मे कई प्रस्ताव हैं जिनमे एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव यह है कि एक लोक संसद भी बने और यह लोक संसद वर्तमान संसद के समकक्ष हो। इसका चुनाव और चुनाव प्रणाली संसद के ही समान हो और साथ–साथ हो। किन्तु लोक संसद और वर्तमान संसद के अधिकार और दायित्व बिल्कुल अलग–अलग हों। अर्थात लोक संसद वर्तमान संसद के संविधान संशोधन के एक मात्र अधिकार को छोडकर किसी भी कार्य मे कोई भूमिका अदा नहीं कर सकेगी। यदि कोई संविधान संशोधन का प्रस्ताव लोक संसद अथवा वर्तमान संसद के समक्ष आता है तो लोक संसद और वर्तमान संसद अलग–अलग बैठकर सहमति के द्वारा ही संविधान संशोधन कर सकते हैं। यदि दोनो के बीच किसी विषय पर पूरी सहमति नही बनी और अंत तक टकराव कायम रहा तो उक्त संविधान संशोधन के लिये जनमत संग्रह अनिवार्य होगा। लोक संसद का कार्य सिर्फ संविधान संशोधन तक होगा । इसलिये उसकी सकियता बहुत कम होगी। इससे जुड़े लोगों का कोई वेतन नहीं होगा, कोई अलग से ऑफिस भी नहीं होगा। लोक संसद का चुनाव निर्दलीय होगा यदि आवश्यक समझा जाये तो लोक संसद को चार कार्य और भी दिये जा सकते है। 1. राईट टू रिकॉल का प्रावधान बनाना। 2. लोकपाल की नियुक्ति और नियंत्रण । 3. संसद सदस्यो के वेतन भत्ते का निर्धारण। 4 किन्ही दो संवैधानिक इकाइयों के बीच टकराव की स्थिति में निपटारा करना। इसके अतिरिक्त लोक संसद की कोई भूमिका नहीं होगी।

प्रश्न उठता है कि यह कार्य होगा कैसे। संविधान संशोधन के अतिरिक्त कोई और मार्ग नहीं है। संविधान संशोधन के अब तक दुनियां मे चार मार्ग दिखते हैं। 1. जय प्रकाश जी का अर्थात संसद में जाकर संविधान संशोधन । 2. अन्ना हजारे का मार्ग जिसमे प्रबल जनमत खड़ा करके संविधान संशोधन करने हेतु संसद को सहमत करना । 3. ट्यूनीशिया और मिश्र का मार्ग। 4. लीबिया का मार्ग । अंतिम दो मार्ग भारत में अनावश्यक और अनुपयुक्त हैं। प्रथम दो मार्गो का प्रयोग किया जा सकता है। इन दोनों पर निरंतर सक्रियता बनी हुई है। राजनीति में जाकर संविधान संशोधन के प्रयास में कुछ संगठन निरंतर सकिय है। हरियाणा में रणवीर शर्मा भी लगातार इस कार्य में लगे हुए है। दूसरी ओर व्यवस्था परिवर्तन अभियान कमेटी अन्ना मार्ग से चलकर लगातार जनमत जागरण का प्रयास कर रही है। मुख्य रूप से दो प्रस्तावो पर अधिक जोर दिया जा रहा है। 1. परिवार, गांव, जिले को संवैधानिक अधिकार। 2. लोक संसद की स्थापना। इन दोनो विषयों पर पिछले एक वर्ष से निरंतर संपूर्ण भारत में एक साथ जनमत जागरण किया जा रहा है। इन दोनों प्रयासों से कौन सा सफल होगा, यह नहीं कहा जा सकता, किन्तु दोनों प्रयास अलग–अलग निरंतर जारी हैं और लोग अपनी–अपनी रूचि अनुसार जुड़ते जा रहे हैं। यहां तक कि व्यवस्था परिवर्तन अभियान कमेटी की ओर से सत्रह, अठारह, उन्नीस मार्च को नोएडा में एक राष्ट्रीय सम्मेलन की भी योजना बनी है। कमेटी ने आम लोगों से शामिल होने का भी निवेदन किया है।

मैं एक विचारक हूँ। उम्र और स्वास्थ के हिसाब से आवागमन या सक्रियता कठिन है। फिर भी मैं एक विचारक के रूप में इन प्रयासों का सहयोग और समर्थन करता हूँ। साथ ही मैं एक आस्थावान हिन्दू होने

के आधार पर ईश्वर से भी निवेदन करता हूँ कि समाज व्यवस्था को गंदी राजनीति की गुलामी से मुक्त होने में सहायता करे।

मंथन क्रमांक–14 दहेज प्रथा

भारत 125 करोड़ व्यक्तियों का देश है और उसमें प्रत्येक व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार समान हैं। इनमें किसी भी प्रकार का महिला या पुरुष या कोई अन्य भेदभाव नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार समान हैं।

फिर भी महिला और पुरुष के बीच कुछ प्राकृतिक और सामाजिक असमानताएँ हैं। दोनों की शारीरिक संरचना भिन्न–भिन्न है। सामाजिक संरचना में भी कुछ भिन्नताएँ हैं। अर्थात एक महिला और पुरुष को संतान उत्पत्ति के लिए किसी अन्य परिवार के साथ जुड़ना अनिवार्य है। यह वैज्ञानिक कारण से है या परम्परागत किन्तु पूरे विश्व में इसकी मान्यता अवश्य है । इसी तरह पति पत्नी के बीच यह भी आवश्यक है कि पति को सामान्यतया आक्रामक और पत्नी को आकर्षक स्वरुप में रहना चाहिये । इन सब स्थितियों को देखते हुए ही संयुक्त परिवार को समाज की पहली व्यवस्थागत इकाई माना गया। यह व्यवस्था की गई कि परिवार के सदस्य मिलकर यह तय करेंगे कि किस सदस्य को किस प्रकार का कार्य प्रमुखता से करना है। इस कार्य विभाजन में भी महिला और पुरुष का भेद स्वाभाविक होता है। इस तरह यह व्यवस्था आवश्यक हो जाती है कि महिला और पुरुष में से कोई एक दूसरे के परिवार में जाकर रहे और इस परिवार परिवर्तन में महिलाओं को अधिक महत्व दिया जाता है।

समाज व्यवस्था में स्वतंत्रता के बाद राजनैतिक हस्तक्षेप बढ़ा। हर राजनेता को पारिवारिक और सामाजिक एकता से हमेशा भय बना रहता है इसलिए हर राजनैतिक दल किसी न किसी रुप में इस एकता को छिन्न–भिन्न करता रहता है। वह चाहता है कि धर्म जाति की तरह ही महिला और पुरुष का लिंग भेद भी उसकी परिवार तोडक, समाज तोडक भूमिका में सहायक हो। पारिवारिक संरचना एक बहुत जटिल प्रकिया है किसी एक परिवार का पला बडा सदस्य परिवार छोडकर किसी दूसरे परिवार में शामिल होने के लिए मजबूर होता है तो इस परिस्थिति की कल्पना करना भी कठिन होता है किन्तु इसके अलावा कोई मार्ग नहीं होता। इस जटिलता की कमजोरियों का राजनेता लाभ उठाते हैं। महिला और पुरुष के बीच एक दूसरे के प्रति कुछ स्वाभाविक आकर्षण होता है । इस आधार पर महिला और पुरुष के बीच दूरी घटनी चाहिये या बढनी चाहिये इसका निर्णय उन महिला और पुरुष अथवा उनके परिवार पर छोडा जाना चाहिये था किन्तु हमारे राजनेताओं ने जबरदस्ती इस दूरी घटाने और बढाने में अपना कानूनी पैर फसाया। सामान्यतया व्यवस्था है कि लडकी और लडके के परिवार यह अवश्य देखते हैं कि परिवार बदलते समय लडकी की तुलना में लडके की योग्यता अधिक हो। इसमें भी राजनेता महिला सशक्तिकरण के नाम पर हस्तक्षेप करता है। परिवार में जन्म लिया बालक परिवार समाज और राष्ट्र के सम्मिलित अधिकार का माना जाता है किन्तु इसमें भी कानून बालक को राष्ट्रीय सम्पत्ति मानने की तिकडम करता रहता है।

मैंने अपने अनुभव से देखा कि सम्पूर्ण भारत में लगभग 99 प्रतिशत लोग दहेज का विरोध करते हैं और लगभग सबके सब अपने लडके के विवाह में अधिक से अधिक दहेज लेने का प्रयास करते हैं। एक ओर तो ऐसे दहेज विरोधी लडकी के पिता के प्रति बहुत दया भाव प्रकट करते हैं दूसरी ओर वही लोग विवाहित लडकी को पिता से सम्पत्ति लेने के लिए मुकदमा लडने तक की प्रेरणा देते देखे जाते हैं। कानून तो पूरी तरह ऐसे पिता पुत्री टकराव का तानाबाना हमेशा बुनता ही रहता है। किन्तु कभी कभी तो धर्मगुरु तक इस प्रचार में शामिल हो जाते हैं। परिवार का अर्थ सम्पूर्ण समपर्ण और सहजीवन होता है। इस सहजीवन में बाहर का हस्तक्षेप विशेष परिस्थिति में ही होना चाहिए किन्तु हमारे कानून हर मामले में हस्तक्षेप भी करते हैं और यदि दो लोग अलग होना चाहें तो उन्हे अलग होने की स्वतंत्रता में भी बाधा उत्पन्न करते हैं।

मैं भी बचपन में दहेज विरोधी रहा। मेरे लड़के के विवाह के लिए एक परिचित गरीब व्यक्ति ने इच्छा व्यक्त की। मैंने उन्हें एक अन्य बहुत योग्य लड़का सुझाया तो उन्होंने यह कहकर इन्कार कर दिया कि वे तो मेरे ही घर में लडकी देना चाहते हैं। मुझे लगा कि उन्हें लडका या परिवार की अपेक्षा मेरी जमीन और आर्थिक सम्पन्नता से अधिक मोह है। मैंने इन्कार कर दिया और दहेज विरोध के प्रति मेरा मोह भंग हो गया। मैंने महसूस किया कि दहेज कोई बुराई न होकर एक सामाजिक व्यवस्था रहा है । विवाह के समय एक लडकी अपने पिता के घर से अपना अनुमानित हिस्सा लेकर जाती है और पति परिवार अपने लड़के के हिस्से के अनुपात में जेवर के रुप में बहू को देता है। यह जेवर अंत तक उस लडकी की व्यक्तिगत सम्पत्ति मानी जाती है। अपवाद स्वरुप ही माता पिता इसमें कोई गडबडी करते रहे हैं। मैं नहीं समझता कि इस दहेज प्रथा को क्यों तोडकर लडकी को

पिता की सम्पत्ति में कानूनी अधिकार को मान्यता दी गई। यदि ऐसा करने वाले की नीयत पर संदेह किया जाये तो क्या गलत है? पुराने समय में तो वैसे भी सम्पत्ति का बटवारा न के बराबर होता था। यह तो कानूनी बटवारा भारत में अंग्रेजो की देन है जो न समाज व्यवस्था मानते हैं न ही परिवार व्यवस्था को। वे तो केवल व्यक्ति को ही समाज की एक मात्र इकाई मानते हैं। वैसे भी भारत में आधी आबादी दहेज से संबंध नहीं रखती। शेष आधी आबादी भी ऐसी है जो सम्पन्न माने जाते हैं। पता नहीं हमारे नेताओं को इन सम्पन्नों की दहेज प्रथा के बारे में सोचने की जरुरत क्यों पड़ी। इन्होंने दहेज के नाम पर व्यवस्था को तोडा। जबकि यदि इनमें कोई कमी थी तो उसे सुधारना चाहिये था। मैं सोचता हूँ कि दहेज का विरोध करना बिल्कुल ही अव्यावहारिक है। कोई अच्छी लडकी बिना दहेज के सम्पन्न कमजोर लडके के साथ स्वेच्छा से जाती है या कोई सम्पन्न कमजोर लडकी धन देकर किसी गरीब के साथ चली जाती है तो यह उनका आंतरिक मामला है और यदि सहमति है तो इसमें समाज या कानून का हस्तक्षेप क्यों? भारत में जितने प्रतिशत गरीब हैं, उतने ही प्रतिशत गरीब लडको की भी संख्या है और गरीब लड़कियों की भी। यदि कोई सामाजिक कांति करके या कानून बनाकर बडे घर के लडकों के साथ बिना दहेज के गरीब लड़कियों का विवाह कराने की पहल की गई तो मेरे विचार से तो यह प्रयास बहुत ही हानिकारक होगा क्योकि क्या यह भी प्रयास होगा कि फिर बड़े घर की लड़कियों को गरीब लड़कों के साथ जोडने की मुहिम शुरु की जाये। मैं तो सोच भी नहीं सकता कि दहेज का विरोध करने वाले इतनी साधारण सी बात भी क्यों नहीं समझ पाते।

यदि हम वर्तमान स्थिति की समीक्षा करें तो देख रहे हैं कि स्वाभाविक रूप से दहेज पूरी तरह समाप्त हो गया है। विवाह योग्य लड़कियों की संख्या बहुत कम हो गई है। कहीं कहीं तो लड़के वाले दहेज देने लगे हैं। जाति प्रथा भी टूट रही है। इसके बाद भी कुछ पेशेवर नेता और सामाजिक कार्यकर्ता दहेज को समस्या के रूप में बताते रहते हैं। उनकी आदत हो गई है। एक विचारणीय सिद्धान्त यह भी है कि किसी वर्ग में सभी व्यक्ति अच्छे या बुरे नहीं होते। यदि किसी वर्ग विशेष को विशेष अधिकार दिये जाते है तो उस अधिकार प्राप्त वर्ग के धूर्त अपराधी प्रवृत्ति के लोग उस विशेषाधिकार का लाभ उठाते हैं और उस वर्ग से बाहर के शरीफ लोगों का शोषण होता है। दहेज के कानून का कितना दुरूपयोग हुआ यह पूरा देश जानता है। फिर भी पता नहीं क्यों ऐसे–ऐसे धूर्त सशक्तिकरण के विशेषाधिकार कानून बनाये भी जाते है और रखे भी जाते है।

मैं जानता हूँ कि दहेज के मामले में ऐसी सोच रखने वाला मैं अकेला ही हो सकता हूँ किन्तु मैं आश्वस्त हूँ कि परिवार के पारिवारिक मामलों में किसी भी प्रकार का कोई कानूनी हस्तक्षेप बहुत घातक होगा। हिन्दू कोड बिल तो पूरा का पूरा समाज व्यवस्था के लिए एक कलंक है ही। यह परिवार को तोडता है, समाज को तोडता है, और किसी प्रकार का कोई लाभ नहीं देता। फिर भी मैं यह महसूस करता हूँ कि पुरानी व्यवस्था पर न तो अब लौटना संभव है,न ही उचित। इसलिए मैं एक संशोधित व्यवस्था का सुझाव देता हूँ। इसके अनुसार सरकार को पारिवारिक मामलों में सारे कानून हटा लेने चाहिये। साथ ही एक नई व्यवस्था बनानी चाहिये कि परिवार की सम्पत्ति में परिवार के प्रत्येक सदस्य का जन्म से मृत्यु तक समान अधिकार होगा। इसमें उम्र, लिंग आदि का कोई भेद नहीं किया जायेगा। परिवार की आंतरिक व्यवस्था परिवार के लोग बिना बाहरी हस्तक्षेप के आपसी सहमति से स्वतंत्रतापूर्वक कर सकेंगे। यदि परिवार का कोई सदस्य कभी भी परिवार छोडना चाहे तो वह अपना हिस्सा लेकर परिवार छोड सकता हैं।

मैं यह भी जानता हूँ कि कोई भी राजनेता ऐसे सुझाव को स्वीकार नहीं करेगा क्योंकि इससे तो उसका समाज तोडक उद्देश्य ही खत्म हो जायेगा किन्तु मैं समझता हूँ कि हमें इस विषय पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। मैं देखता हूँ कि मेरे कई साथी समाज सेवा के नाम पर दहेज प्रथा के विरोध में कुछ न कुछ करते बोलते रहते है। मेरा उन साथियों से भी निवेदन है कि वे राजनेताओं के दहेज विरोधी प्रचार से अपने को मुक्त करें और महसूस करें कि दहेज कोई सामाजिक समस्या या अन्याय अत्याचार नहीं बल्कि एक सामाजिक व्यवस्था है जो आपसी सहमति से चलती हैं।

मंथन क्रमांक 15 कृषि और पर्यावरण का संतुलन कैसे

यदि हम सम्पूर्ण भारत का ऑकलन करें तो पूरे देश में पर्यावरण प्रदूषण एक गंभीर चिंता का विषय बना हुआ है। समाधान के लिए अन्य अनेक उपायो में से वन विस्तार को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। भारत की न्यायपालिका तक वन विस्तार को बहुत अधिक महत्वपूर्ण मानकर निरंतर हस्तक्षेप करती रहती है। जंगल का क्षेत्रफल किसी भी परिस्थिति में न घटे, बल्कि बढता रहे, इसकी चिंता सभी करते रहते हैं। वन विस्तार के लिए जंगलों में हिसंक जानवर भी बढाये जा रहे हैं। पर्यावरणविद भी बहुत चिंता करते हैं। यदि कोई व्यक्ति एक भी पेड काट ले तो

पर्यावरणविद ऐसा महसूस करते हैं जैसे कि उनकी जान चली गई हो। किसी व्यक्ति को अपनी भूमि पर लगाये गये अपने पेड काटने पर भी न्यायालय हस्तक्षेप करता है। स्पष्ट है कि वन विस्तार हमारे देश की एक मुख्य आवश्यकता है और उस पर सारी दुनियां अपनी नजर रखती है।

सिंचाई भी एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। पानी का स्तर निरंतर घटता जा रहा है क्योंकि जल संग्रह क्षेत्र सिकुड रहे हैं। तालाब पाटे जा रहे हैं। देश भर में कुएं और तालाब के विस्तार को बहुत महत्व दिया जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त राजेन्द्र सिंह जी ने तो इस समस्या को इतना महत्व दिया है कि वे पानी के अभाव को ही युद्ध का कारण तक बताते हैं। खेती के लिए भी सिंचाई महत्वपूर्ण आवश्यकता है। जगह जगह छोटे से लेकर बडे बडे बांध बनाये जा रहे है जिनमे हजारो एकड जमीन और जंगल डुब जाते है। फिर भी सिचाई की महत्ता को देखते हुए यह कार्य किया जा रहा है।

देश की आबादी लगातार बढ़ रही है। स्वतंत्रता के 70 वर्ष बीतते बीतते आबादी चार गुनी बढ़ गई है। स्वाभाविक है कि आबादी की वृद्धि के हिसाब से सुविधाओं की भी जरुरत बढी है। रहने के लिए घर, आवागमन के लिए रेल सडक, पढने के लिए स्कूल और स्वास्थ के लिए अस्पताल बढे भी हैं और निरंतर बढने भी चाहिये। व्यवस्था के लिए अलग अलग कार्यालय भी खोलने आवश्यक हैं। इस संबंध में भी सारे देश में कोई न कोई आन्दोलन होते ही रहते हैं।

देश के विकास के लिए कल कारखाने और उद्योग धंधो का विस्तार भी बहुत आवश्यक है। यदि उद्योगों का विस्तार नहीं होगा तो देश का विकास रुक जायेगा। हमारे निर्यात पर दुष्प्रभाव पडेगा। वर्तमान सरकार तो विकास को ही सर्वोच्च प्राथमिकता दे रही है। देश के विकास के लिए खदानों को भी बहुत उपयोगी माना जा रहा है। कोयला सहित अनेक प्रकार की खदानों का निरंतर विस्तार जारी है।

आबादी की वृद्धि और अनाज के मामले में आत्मनिर्भर बनने के लिए कृषि उत्पादन का बढना भी सर्वोच्च प्राथमिकता मानी जा रही है। यदि कृषि उत्पादन नहीं बढा तो लोग हवा पानी उद्योग और अस्पताल स्कूल के सहारे जीवित नहीं रह सकते। स्पष्ट है कि कृषि उत्पादन तेजी से बढना चाहिये।

उपर में सभी पॉच बातें इस बात पर निर्भर करती हैं कि हमारे पास भूमि का क्षेत्रफल क्या है और उसका आपस मे समायोजन कैसे हो? स्पष्ट है कि भूमि का क्षेत्रफल निश्चित है और आवश्यकताओं का बढना अनन्त है । वन विस्तार भी हो, सिचाई भी बढे, खेती भी बढे, और उद्योग धंधे भी बढे तो भूमि का बटवारा किस प्रकार होगा यह कौन तय करेगा । मेधा पाटकर नारा लगाती है कि किसी की जमीन घर डूब में नहीं आनी चाहिये तो प्रो0 राजेन्द्र सिंह निरंतर आन्दोलन करते हैं कि पानी की समस्या सबसे पहले सुलझना चाहिये। राजगोपाल जी भी जल जंगल जमीन के लिए देश भर में आन्दोलन करते रहे हैं। अभी दो चार दिन पहले भी ऐसे आन्दोलनकारियों का जमघट हजारों की संख्या में दिल्ली में देखा गया है। उद्योगों पर तो मोदी जी सबसे अधिक ध्यान दे रहे है। आदिवासियों की जमीन उनके पास रहे इसके लिए ब्रम्हदेव शर्मा सहित अनेक लोग निरंतर संघर्ष करते रहे हैं। कृषि भूमि किसी भी परिस्थिति में न घटे इसकी मांग तो होती ही रहती है तो प्रश्न उठता है कि भूमि का क्षेत्रफल कैसे बढे और यदि क्षेत्र बढाना असंभव है तो कृषि को नुकसान पहुॅचाये बिना शेष चार जगह भूमि वितरण को संतुलित कैसे किया जाये। हर आदमी को घर बनाने के लिये तथा खेती के लिये थोडी थोडी जमीन मिलनी चाहिये यह मांग सही है किन्तु कहां से जमीन निकले और कहां कटौती हो इसका उत्तर किसी मांग कर्ता के पास नही है। पांच प्रकार की अलग अलग मांग करने वाले कभी एक साथ बैठकर समाधान नही खोजते। यहां तक कि ये लोग एक दूसरे की मांग में शामिल तक हो जाते है। समस्या जटिल है और समाधान मिल बैठकर ही संभव है। हमारी मांगे पूरी हों चाहे जो मजबूरी हो के समान नारे लगाने वाले समाधान नहीं खोजना चाहते क्योंकि ऐसे नारे लगाना तो उनकी दुकानदारी है। यह दुकानदारी उस समय बहुत घातक हो जाती है जब ऐसे पेशेवर लोग विदेशो से धन और सम्मान लेकर ऐसे किसी संतुलन में बाधा पहुॅचाते हैं। मैं जानता हूॅ कि ये पर्यावरण, जल और वन विस्तार, सबको घर मकान और सबको भूमि का नारा लगाने वाले न स्वयं पेड लगाते है न ही छोटे घर में रहते है और कभी स्वयं खेती भी नहीं करते क्योंकि नारा लगाना उनका व्यवसाय है।

किन्तु हम सबको मिलकर तो इस समस्या का समाधान करना ही चाहिये। खेती से जुडी एक महत्वपूर्ण समस्या यह भी है कि प्रतिवर्ष हजारों किसान आत्महत्या करते हैं और यह सिलसिला रुक नहीं रहा। कृषि उत्पादन बढे और कृषि का क्षेत्रफल घटे ये दोनों एक साथ अस्वाभाविक है और इसके अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग भी नहीं है। हमें कृषि की भूमि में कटौती करके अन्य चार को मजबूत करना होगा तथा साथ में कृषि उत्पादन भी बढाना ही होगा। प्राचीन समय में भारत कृषि पर निर्भर था। यह भावनात्मक निर्भरता ही हमारी समस्याओं का

प्रमुख कारण है। कृषि को उद्योग माना जाये और किसान को श्रमिक एवं उद्योगपति के बीच से पूरी तरह निकाल दिया जाये तो ये दोनों काम एक साथ संभव हैं। छोटी छोटी जमीने बडे उद्योगपतियों के द्वारा खरीद ली जा सकती हैं। तकनीक के सहारे कृषि उत्पादन कम भूमि में बढाया जा सकता है। अभाव में मर रहे छोटे किसान श्रम करके आराम से रह सकते हैं। मेरे विचार से हमें किसान शब्द का परम्परागत मोह वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर छोड देना चाहिये। सरकार छोटे किसानों को ब्याज मुक्ति या कुछ सब्सीडी देकर उन्हें जिंदा रखने का प्रयास करती है। और ऐसे ही प्रयास में से कुछ लोग आत्महत्या करते हैं। इसे तब तक नहीं रोका जा सकता जब तक कि उन्हें मजदूर या बडे किसान में से एक दिशा में बढने की छूट न दी जाये। खेती के नाम पर दी जा रही अनेक प्रकार की सुविधाए उन्नत खेती के विकास में बाधक बन रही है। न्याय के नाम पर व्यवस्था लगातार कमजोर हो रही है। मैं जानता हूँ कि आदिवासी के नाम से लाखो एकड ऐसी जमीन फंसी हुई है जो बहुत कम उत्पादन कर पा रही है। यदि हम आदिवासी को भारत का सामान्य नागरिक मानना शुरु कर दें तो आदिवासी भी अपने को छोटे किसान से मुक्ति पा लेगा और भूमि उन्नत तकनीक की दिशा में बढ जायेगी।

मैं जानता हूँ कि कुछ लोग यह प्रश्न उठायेंगे कि किसानों को एकाएक छूट बंद कर देने से उनकी आत्महत्या बढ सकती है । मैं समझता हूँ कि जल्दी ही आत्महत्याए पूरी तरह बंद हो जायेगी क्योंकि आमतौर पर मजदूर आत्महत्या नहीं कर रहे और छोटे किसान कर रहे हैं। न तो छोटे किसान रहेंगे न ही आत्महत्या होगी। मैं यह भी जानता हूँ कि विदेशों से पैसा लेकर हमारी सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था को छिन्न भिन्न करने वाले अनेक परजीवी इसमें बहुत बाधा पैदा करेंगे। वे आन्दोलन करेगे जल जंगल जमीन का, डूब का, सबको भूमि वितरण का और साथ ही आदिवासी के लिए। इस जमात को विदेशो से भी बहुत प्रोत्साहित किया जायेगा। इस परजीवी जमात से तो हमें निपटना ही पडेगा। मैं चाहता हूँ कि भूमि का अच्छे से अच्छा उपयोग हो और भूमि के क्षेत्रफल में सब बैठकर समन्वय स्थापित करें कि कम से कम भूमि में अधिक से अधिक उत्पादन कैसे लिया जा सकता है। सभी समस्याओ के एक मुश्त समाधान के लिये कुछ न कुछ तो करना ही होगा और मुझे यह मार्ग अधिक उपयुक्त तथा सुविधाजनक लगता है।

दहेज प्रथा समीक्षा

हम एक सप्ताह से दहेज प्रथा विषय पर विचार मंथन कर रहे हैं। आज शुक्रवार है और कल से कृषि और पर्यावरण विषय की समीक्षा शुरु होगी। दहेज विषय पर कुछ निष्कर्ष निकाले गये हैं–

1. दहेज नहीं लेना एक आदर्श स्थिति है और बहुत ही अच्छी बात है। इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना चाहिये और ऐसे परिवार की प्रशंसा होनी चाहिये। यदि स्वैच्छिक दहेज का लेन देन होता है तो वह भी इसी श्रेणी में माना जाना चाहिये।

2. सौदेबाजी करके दहेज का लेन देन करना न तो अच्छी बात है, न ही आदर्श। किन्तु यह बात न ही कोई बुराई है, न ही अपराध। इसे एक व्यवहारिक दृष्टिकोण कह सकते हैं, जो न सामाजिक कार्य है, न ही आपराधिक। ऐसा कार्य असमाजिक कहा जा सकता है जिसके लिए न प्रशंसा उचित है न ही आलोचना।

3. विवाह के बाद किसी भी प्रकार से दहेज के लिए दबाव डालना या प्रताडित करना समाज विरोधी कार्य माना जाना चाहिये। ऐसे कार्य को निरुत्साहित भी करना चाहिये तथा आलोचना भी होनी चाहिये। किन्तु यदि ऐसा कार्य किसी के प्राकृतिक अधिकारों का उल्लंघन करता है तो ऐसे कार्य के लिए उक्त अपराधी को दण्डित भी करना चाहिये।

4. जब तक कोई अपराध न हो तब तक दहेज को निरुत्साहित ही कर सकते है, दण्डित नहीं। अपराध गलत है चाहे दहेज के नाम पर हो या किसी अन्य नाम पर। इसका अर्थ हुआ कि दहेज अथवा किसी अन्य पारिवारिक मामले में कानून का हस्तक्षेप शुन्यवत होना चाहिये। ऐसा कार्य परिवार या समाज पर छोड देना चाहिये। पारिवारिक, सामाजिक व्यवस्था में यदि कोई बुराई प्रवेश करती है तो उसे रोकना सरकार का काम नहीं। ऐसे सभी कानून समाप्त हो जाने चाहिये।

5. महिला और पुरुष की तुलना आग और बारुद से होती है। दूरी घटना, विध्वंश का कारण बन सकता है और दूरी बढना श्रृजन में बाधा पैदा करेगा। दूरी घटने या बढने का निर्णय व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक हो सकता है। विशेष परिस्थितियों में समाज भी ऐसे निर्णय को अनुशासित कर सकता है किन्तु सरकार को इस संबंध में तब तक कोई कानून नहीं बनाना चाहिये जब तक कोई अपराध न हो।

प्रश्नोत्तर

कुछ साथियों ने लोकसंसद की और अधिक विस्तृत व्याख्या करने का सुझाव दिया है। कुछ ने यह भी समझना चाहा है कि वर्तमान समय में व्यवस्था परिवर्तन में लगे अन्य संगठनों की भूमिका क्या है, और इन संगठनों से व्यवस्था परिवर्तन अभियान कमेटी कैसे अलग है? मैं उचित समझता हूँ कि इन प्रश्नों के माध्यम से विषय की विस्तृत व्याख्या की जाये।

वर्तमान समय में व्यवस्था परिवर्तन में सक्रिय अनेक संगठनों के साथ मिलकर मैंने काम किया है। कुछ संगठनों से विचार विमर्श भी चलता रहा है और वर्तमान में चल भी रहा है। व्यवस्था परिवर्तन में मोदी जी के माध्यम से भारतीय जनता पार्टी, नीतिश कुमार, अरविन्द केजरीवाल, गोविंदाचार्य जी, रणवीर शर्मा, सर्वोदय, अमरनाथ भाई, कुमार प्रशांत, भरतगॉधी, रोशनलाल अग्रवाल, राहुल मेहता, बाबा रामदेव, मेधापाटकर आदि निरंतर सक्रिय हैं। अन्य अनेक संगठन या व्यक्ति भी सक्रिय है जिनसे मेरा प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्पर्क नहीं है। नरेन्द्र मोदी, नीतिश कुमार, अरविन्द केजरीवाल, निरंतर सुशासन को ही व्यवस्था परिवर्तन समझ रहे हैं। गोंविदाचार्य जी या तो राज्य सभा को अधिक महत्व देना चाहते हैं या भारतीय संस्कृति को। ये गाय, गंगा, मंदिर अथवा गांवो को सरकार से अधिक फंड दिलाने तक सीमित है। रोशनलाल अग्रवाल, भरत गॉधी आर्थिक सुधार से जरा भी आगे नहीं सोचते। जबकि सिर्फ आर्थिक सुधार राज्य की शक्ति को अधिक मजबूत करेंगे, कमजोर नही, और आर्थिक असमानता की तुलना में राजनैतिक असमानता कई गुना अधिक घातक है। सर्वोदय से जुडे अमरनाथ भाई, कुमार प्रशांत, आदि सर्वोदय से जुडे लोग संघ परिवार विरोध, अमेरिका विरोध को ही व्यवस्था परिवर्तन तक सीमित रखते हैं। यहॉ तक कि ठाकुरदास बंग, सिद्धराज ढंढा ने लोक स्वराज्य की दिशा में कुछ सोचना शुरु किया तो सर्वोदय ने ही उन्हें ऐसा करने और सोचने से रोक दिया। बाबा रामदेव स्वदेशी और कालाधन को ही व्यवस्था परिवर्तन मान रहे हैं। मेधापाटकर अप्रत्यक्ष रुप से सत्ता परिवर्तन के प्रयास में लगी हैं। राहुल मेहता भी राईट टू रिकॉल और भ्रष्टाचार नियंत्रण तक सीमित हैं। इनमें से अनेक लोग गॉधी का नाम या पहचान जोडकर उसका उपयोग करते हैं। कुछ लोग तो अपने को गॉधी का छोटा बेटा भी प्रचारित करके उनका दुरुपयोग करते हैं। जबकि गांधी स्वप्न में भी सत्ता की ओर आकर्षित नही थे, और नकली गांधी रात दिन राजनैतिक सत्ता के लिये स्वप्न में भी छटपटाते रहते है। कुछ लोग सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन तो कुछ आर्थिक व्यवस्था परिवर्तन और कुछ अन्य राजनैतिक व्यवस्था परिवर्तन तक अपने को सीमित रखते है।

मेरे विचार में संसदीय लोकतंत्र को सहभागी लोकतंत्र के रुप में बदलना ही व्यवस्था परिवर्तन है। वस्तुस्थिति यह है कि भारत में संसदीय लोकतंत्र की जगह लोकतांत्रिक संसद होनी चाहिये थी, जो नहीं है। सहभागी लोकतंत्र को ही लोकस्वराज्य भी कहा जाता है। व्यवस्था परिवर्तन का अर्थ सुशासन नहीं ,स्वशासन है। भौतिक विकास नहीं, नैतिक उन्नति है। समानता का नारा नहीं, बल्कि स्वतंत्रता का नारा है। हमें सुराज्य नहीं, स्वराज्य चाहिये। इस विचार के साथ सहभागी लोकतंत्र को बढ़ना चाहिये। प्रश्न लोक और तंत्र के बीच सुविधाओं का नहीं है बल्कि विचारणीय प्रश्न यह है कि लोक और तंत्र के बीच अधिकारों के विभाजन का अनुपात क्या है और क्या होना चाहिये। भारत के किसी भी नागरिक को आज ऐसा कौन सा अधिकार प्राप्त है जिसमें भारतीय संविधान हस्तक्षेप न कर सके और भारतीय संविधान को ऐसा कौन सा संरक्षण प्राप्त है जिसमें तंत्र मनमाना संशोधन न कर सके। यहॉ तक कि भारतीय न्यायपालिका ने, जो तंत्र का ही एक हिस्सा है, उसने असंवैधानिक कदम उठाकर आदेश दिया कि संसद संविधान के मूल ढॉचे में कोई बदलाव नहीं कर सकती । आज तक न्यायपालिका ने इस मूल ढॉचे की भी कोई व्याख्या न करके वह अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा हुआ है। इस तरह संविधान संसद का पूरी तरह गुलाम हो गया है। संसदीय लोकतंत्र संविधान से मुक्ति चाहता है और सहभागी लोकतंत्र संविधान की मुक्ति चाहता है । कितना स्पष्ट अंतर है दोनों में।

कोई व्यक्ति यदि तंत्र और लोक के अधिकारों की सीमाओं के पुनर्निर्धारण के अतिरिक्त कोई अन्य प्रयास को व्यवस्था परिवर्तन कहता है तो वह ईमानदार प्रयास नहीं। स्पष्ट पहचान है कि यदि कोई संसद के असीम अधिकारों को सीमित करने के प्रयास के साथ न हो तो स्पष्ट है कि उसका उद्देश्य कहीं न कहीं राजनैतिक सत्ता के प्रयासों के साथ जुडा हुआ हैं। यहॉ तक कि गोंविदाचार्य जी, अरविन्द केजरीवाल, तथा रणवीर शर्मा तक लोकसंसद की बात को छोडकर अन्य सभी प्रयास करने में सहमत हैं। जबकि मेरे विचार में लोकसंसद ही एकमात्र प्रयास है जो व्यवस्था परिवर्तन का मार्ग खोल सकता है। नियंत्रण का तरीका क्या हो, नियंत्रण कैसे हो, नियंत्रण करने वाली इकाई का नाम लोकसंसद हो, जनसंसद हो या कोई और हो, यह विषय महत्वपूर्ण नहीं। इस पर बैठकर चर्चा हो सकती है। किन्तु संविधान को संसद की गुलामी से मुक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयास को अंतिम प्रयास मानने पर कोई चर्चा संभव नहीं हैं।

किन्तु अंतिम रुप से निराश होना भी ठीक नहीं। 'व्यवस्थापक' एक ऐसी संस्था है जो इस दिशा में निरंतर जनजागरण में सकिय है। वैसे तो सम्पूर्ण व्यवस्था परिवर्तन अर्थात सामाजिक, राजनैतिक, संवैधानिक, आर्थिक, धार्मिक, आदि सब प्रकार के व्यवस्था परिवर्तन के लिए जनजागरण करने में यह संस्था सकिय हैं किन्तु वर्तमान में चार मुददों पर प्रमुख जोर दिया जा रहा हैं– 1. परिवार, गॉव ,जिले को संवैधानिक अधिकार। 2. लोकसंसद। 3. राईट टू रिकॉल। 4. सुरक्षा पेंशन। इनमें भी पहले दो मुददों पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है। यदि कभी भविष्य में ऐसी मजबूरी आयी कि दो में भी एक को ही चुनना होगा तो यह संस्था लोकसंसद को पहला महत्व देगी। इस तरह वर्तमान समय में मुझे व्यवस्था परिवर्तन अभियान कमेटी अकेली ऐसी संस्था दिखती है जो व्यवस्था परिवर्तन का अर्थ और प्रयास की दृष्टि से ठीक ठाक हैं।

इसका यह अर्थ नहीं कि लोकसंसद ही व्यवस्था परिवर्तन है। लोकसंसद तो व्यवस्था परिवर्तन के बीच आने वाली सबसे बडी बाधा को दूर करने का प्रयास है। व्यवस्था परिवर्तन तो सम्पूर्ण व्यवस्था परिर्वतन है। मैं स्वयं को सम्पूर्ण व्यवस्था परिवर्तन के लिए स्वतंत्र रुप से जनजागरण में निरंतर सकिय हूॅ और उस सकियता की एक कडी के रुप में यह मंथन का कार्यकम निरंतर तीन महिने से जारी है।

उत्तरार्ध

हम आप मिलकर भारतीय लोकतंत्र को संसदीय लोकतंत्र की जगह सहभागी लोकतंत्र की दिशा में ले जाने का मार्ग खोजते रहते हैं। चार मुददों पर चर्चा चलती रही। अक्टूबर 2015 से देश भर में जन जागरण की योजना बनाने की तैयारी शुरू हुई। करीब चार सौ पचास जिलों तक सम्पर्क हुआ है। शेष में जारी है। जागरण के लिये एक सूत्रीय मुद्दे की आवश्यकता महसूस हुई है। इस सम्मेलन में उस पर भी व्यापक चर्चा होगी।

जागरण संदेश के दस दिवसीय जंतर मंतर के कार्यक्रम के पूर्व एक तैयारी बैठक नीचे लिखे समय और स्थान पर आयोजित है। देश भर के प्रमुख साथियों तथा मित्रों के इस सम्मेलन में पूरी योजना बनेगी। आप साथियों सहित अवश्य आने की कृपा करें। जंतर मंतर के दस दिवसीय जन संदेश के पूर्व यह अंतिम बैठक है। अतः आपको अवश्य आना चाहिये। भोजन और निवास की व्यवस्था आयोजन समिति करेगी।

चर्चा का विषय

1. नाम–ग्राम संसद

2. प्रस्ताव–क–देश की स्थानीय इकाइयों (ग्राम+वार्ड) को ग्राम संसद का नाम और स्वरूप दिया जाये।
ख–ग्राम संसदो द्वारा निर्दलीय निर्वाचित पांच सौ तैतालीस सदस्यो की संविधान सभा, राइट टू रिकॉल, जीवन भत्ता, श्रम न्याय, लोकपाल नियुक्ति, सांसद वेतन भत्ता, समान नागरिक संहिता, संविधान संशोधन प्रक्रिया सहित सभी विषयों पर विचार करके संविधान संशोधन प्रस्ताव तैयार करे जिस पर संसद और संविधान सभा अंतिम निर्णय करें।
ग– यदि किसी प्रस्ताव पर संसद और संविधान सभा अंतिम रूप से सहमत न हों तो ग्राम संसद निर्णय करें।
घ– नई व्यवस्था होने तक यदि संसद संविधान संशोधन करे तो ग्राम संसदो की स्वीकृति अनिवार्य हो।
3. सीमा –जन जागरण। किसी भी परिस्थिति में किसी कानून का उल्लंघन नहीं किया जायेगा।
4. क्षेत्र –न्यूनतम सम्पूर्ण भारत
5. हमारी संरक्षण सभा को वीटो का अधिकार होगा।
6. संशोधन–उपरोक्त में किसी प्रकार का कोई संशोधन जिला प्रतिनिधि, सम्मेलन से ही किया जा सकता है।
7. जंतर मंतर के प्रस्तावित दस दिवसीय जन संदेश कार्यक्रम की रूप रेखा और तैयारी, 8. लोक प्रदेश प्रमुख, नीति निर्धारण समिति के सदस्य, लोक प्रदेश संरक्षक, आदि का चयन। 9. लोक प्रदेश कमेटी तथा लोक जिला (ब्लाक) कमेटी का गठन। 10. अन्य तात्कालिक विषयो पर चर्चा
सम्मेलन का स्थान– कम्युनिटी सेंटर, पार्क प्लाजा होटल के पीछे, सेक्टर–55, नोएडा, उत्तर प्रदेश।

दिनांक–सत्रह, अठारह, उन्नीस मार्च दो हजार सत्रह (17,18,19 मार्च 2017)

नोट- उद्घाटन 17 मार्च 2017 को □ोपहर ढाई बजे तथा समापन 19 मार्च 2017 की शाम होगा।

सम्पर्क सूत्र– टीकाराम देवरानी– 08826290511, 08920087023,

निवेदक
व्यवस्था परिवर्तन अभियान कमेटी